# प्रियदर्शिनी की कहानियों में मानवीय संवेदना -'अक्बरवाला' और 'अवैध नगरी के विशेष संदर्भ में

**डॉ. सजीव. के,** असिस्टन्ट प्रोफसर, एन.एस.एस. कॉलेज, ओट्टप्पालम।

प्रवासी लोगों के मन में अपनी मूल संस्कृति और नव संस्कृति का संघर्ष होता है। अपना देश छोडकर दूसरे देशों पर रहनेवाले लोगों को हम प्रवासी कहते हैं। ये प्रवासी लोग अपनी भाषा, धर्म, रीति-रिवाज़, आचार-विचार आदि को अपने साथ लेकर आते हैं। प्रवासियों के मन में भिन्न-भिन्न परिवेशों का एकीकरण एक समस्या बन जाती है। इन तमाम विरोधी भावनाओं और संस्कृतियों की अभिव्यक्ति में साहित्य ही एकमात्र सहारा है, जो कि अपनी भाषा में प्रदर्शित होता है। सुदर्शन 'प्रियदर्शिनी' नामक प्रवासी साहित्यकार की कुछ कहानियों के माध्यम से प्रवासी लोगों के सामने उपस्थित सांस्कृतिक और सामाजिक संघर्षों के प्रतिपादन द्वारा मानवीय संवेदनाओं का महत्व दिखाने का प्रयास ही इस शोध लेख का उद्देश्य है।

**कुंजी शब्द: प्रवासी, संवेदना, पुश्तैनी, अस्तित्ववाद आदि**

प्रवासी साहित्य को अंग्रेज़ी में Daispore Literature कहते हैं। प्रवासी भारतीय भी अन्य देशों में रहते हुए दूसरे देशों के संस्कारों, सभ्यताओं और रीति-रिवाज़ों को स्वीकारने को मज़बूर हुए हैं। वे भारतीय मन को लेकर विदेशी भूमि पर रहते हुए भी सांस्कृतिक तनाव के शिकार हुए तो अपनी मातृभाषा हिंदी में साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत की। अमेरिका में रहते हुए प्रवासी साहित्य लिखनेवालों में सोमा वीरा, उषा प्रियंवदा, सुदर्शन प्रियदर्शिनी जैसे लोग बहुत ही लोकप्रिय हैं। प्रियदर्शिनी ने उपन्यास, कहानी आदि विभिन्न साहित्यिक विधाओं पर लेखनी चलायी है। उनके मुख्य उपन्यास है - 1. 'रेत के घर', 2. 'जलाक', 3. 'सूरज नहीं उगेगा', 4. 'न भेज्यो बिदेस', अब के बिछुडे। उनके कविता संग्रह

है 1. सिखण्डी युग, 2. बराह, 3. यह युग रावण है। 4. मुझे बुद्ध नहीं बनना, काँच के टुकडे और उत्तरायण उनके दो प्रमुख कहानी संग्रह है।

प्रवासी साहित्यकार की रचनाओं की आलोचना करने से पहले ही उनकी जीवन-यात्रा का ज्ञान भी आवश्यक है। प्रियदर्शिनी का जन्म सन् 1942 अगस्त 27 को लाहौर में हुआ था। शिक्षा-दीक्षा से योग्य बनकर सोलह वर्ष तक हिमाचल प्रदेश में अध्यापन कार्य किया। इस सिलसिले में उन्होंने 1982 में पंजाब विश्वविद्यालय से "आत्मकथात्मक शैली के हिन्दी उपन्यासों का अध्ययन" विषय पर पी.एच.डी. लेकर 1982 में अमेरिका गए। अमेरिका में रहते हुए उन्होंने भारतीय संस्कृति पर आधारित पत्रिकाओं का प्रकाशन कार्य भी किया। हाल ही में वे क्लीनलैंड ओहायो अमेरिका में निवसित है।

साहित्यकार सहज ही संवेदनशील होता है। अपने आस-पास के वातावरण की जाँच-परखकर, उसमें संवेदनशीलता का पुट देकर वे रचनाएँ प्रस्तुत करते हैं। प्रवासी साहित्य में मानवीय संवेदना की भूमिका महत्वपूर्ण है। मानव मन में छिपी करुणा, दया जैसी भावनाओं को अतल गहराइयों में छूनेवाली उदात्त वृत्ति ही संवेदना है। संवेदना को मुक्तिबोध ने यों कहा है - संवेदना एक आंतरिक तत्व है जिसमें भाव-संवेद मनोवृत्तियों, प्रच्छन्न विचारों और अवधारणाओं का संयमित आवेग रहता है। संवेदना मानव मन की आशा-निराशाओं, सुख-दुख, मान-अपमान, तनाव-तन्मयता, विचार-विश्वास आदि के साथ परंपराओं, रूढ़ियों, आचार-विचार और संस्कृतियों के लेन-देन से भी जुड़ा हुआ है। यह संवेदना व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक वातावरण से प्रभावित है।

**व्यक्तिगत मानवीय संवेदना**

पाश्चात्य संस्कृति की मरती हुई संवेदना और पशुवत् मनोदशा ने प्रवासी भारतीयों की व्यक्तिगत मानवीय संवेदना को प्रबल बना दिया है। 'अखबारवाला' कहानी में नायिका जया भारतीय परिवेश से जुडी हुई चरित्रवाली है। सुबह जगकर आस-पास की गतिविधियों और पास- पडोसवालों पर नज़र दौडाने की आदत्त भारतीयता का ही परिचायक है। लेकिन अमेरिका की हालत बिल्कुल भिन्न है - "सुबह

बाहर दालान में चक्कर लगाते हुए वह अपनी साथवाली पडोसिन की इधर-मुड कर देखने की दृष्टि को पकडने की तब तक लिका छुपी खेलती रहती जब तक वह उसे गुडमार्निंग न बोल लेती ... पर वह इधर देखने के प्रयास किए बगैर और गुड मार्निंग को बिना स्वीकारे घर के अंदर चली जाती जैसे जया की गुड मार्निंग को छूते ही उसका धर्म या रंग भ्रष्ट हो जाएगा। दूसरी तरफ की पडोसिन मिस स्मिथ को वह समोसे खिलाते रहे, अच्छी-अच्छी हिन्दुस्तानी शादियों की वीडियो दिखाती रहे, तभी तक खुश है वरना तू कौन और मैं कौन।"[1]

सामनेवाले घर के आगे आम्बुलन्स देखकर जया भारतीय परिवेश से प्रेरित होकर वहाँ जाने और दशा जानने को उद्यत होती है। लेकिन अमेरिका में पास-पडोसवालों और अपने सगे-सम्बन्धियों की मृत्यु पर भी कोई रोता-पीटता नहीं है - "अपना देश होता तो यह ऊहापोह न होती, झिझक का तो प्रश्न ही नहीं था। सीधे अन्दर घुस कर स्थिति में पूरी तरह आत्मसात् हो जाती। पर इस पराए देश में क्या करें? ऊपर से वह उस घर में रहनेवाले का नाम तक नहीं जानती।"[2] पडोसवाला रिक से बात करते वक्त अखवारवाले की मृत्यु को वह व्यक्तिगत मामला कहता है तो जया सोचती है - "बीमार होना, दुखी होना व्यक्तिगत मामला है किसी का दुख बाँटना व्यक्तिगत मामले में हस्तक्षेप हो जाता है। आज तक वह सोचती थी कि शायद परदेसी होने के कारण ये लोग हममें जुड नहीं पाते। हमारा रंग, धर्म, संस्कृति बहुत अलग है। इनसे लेकिन इनका तो आपस में भी जुडाव नहीं है। न जाने क्यों जया की जिज्ञासा शांत नहीं हो पा रही थी कि वह तो बिल्कुल उनका नेक्स्ट डोर पडोसी है, इसे तो सब मालूम ही होना चाहिए ...।[3] पानक्रियास कैन्सर से ग्रस्त होकर मरे हुए अखबारवाले का अन्तिम दर्शन के लिए जया का ससुर, जो पहली बार वहाँ आए है देखने जाते है। यह असल में भारतीय परिवेश का प्रभाव है।

लाश को वैन में रखकर ले गया था। जया वहाँ जाना तो चाहती थी, लेकिन नहीं गयी। मानसिक तबाव और सांस्कृतिक टक्कर के प्रभाव से जया दब गयी थी - "उसे अपने आप में एक अजीब तरह की घुटन अरौर बेचैनी महसूस हो रही थी, जैसे कही कुछ अधूरा है। वह इस बात से समझौता नहीं कर पा रही थी

कि कोई दुनिया छोडकर चला जाए और कोई उसके लिए दो आँसू न बहाए ... उसकी अपनी आँखों में नमी उतर आयी थी।"[4]

पुत्र द्वारा चिता को आग लगाना, अन्त्येष्ठी क्रिया, श्राद्ध संस्कार आदि का निर्वाह अमेरिकी संस्कृति में नहीं है। असल में यह कहानी संवेदना के धरातल पर उत्कृष्टतम है। भारतीय और पाश्चात्य परिवेश के साथ औपचारिक आत्मीयता के भाव-बोध की सूक्ष्म पकड को कायम रखने के लिए बहुत मेहनत करना पडता है।

'अवैध नगरी' कहानी मानवीय संवेदना का उद्दाम आवेग पैदा करनेवाली कहानी है। टेस्ट ट्यूब से जन्मा पुरु नामक प्रसिद्ध साइन्टिस्ट पारिवारिक रिश्तों की निरर्थकता पर आलोचना करता है। भारतीय आदर्शों के अनुरूप पारिवारिक रिश्तों पर ज़ोर देनेवाले माहौल से अमेरिका पहूँचे पुरु को जब अपने जन्म संबंधी बातों का पता चलता है तब वह सोचता है कि जन्म देने में माँ-बाप का महत्व नहीं है। वे सन्तानोत्पत्ति को साइन्स का कमाल मानते हैं। बाँझ को माँ बनानेवाली इस युग में यह एक प्रोफेशन बन गया है। जायज बच्चों के जन्म को लक्ष्यकर उचित संपर्क का चयन भी कर सकते है - "डाकटर $ 10,000, इंजीनियर $ 8,000, साइन्टिस्ट $ 10,000, प्रोफेसर $ 7,000।[5] इस प्रकार जन्मे बच्चों पर रूढ़ि, परंपरा, आचार, विचार, जाति, धर्म का बोझ भी नहीं होगा - "न पुश्तैनी रक्त न रिश्ते की पावनता - कुछ भी तो नहीं चाहिए।" कहाँ गई वह जायज- नाजायज की परिपाटी, पवित्र-अपवित्रता के समझौते या वैध-अवैध संतान की मान्यताएँ। स्कूल में पिता के नाम के बिना दाखिल नहीं।"[6]

इन सब वैज्ञानिक विकासों से सुपरिचित पुरु के मन में भारतीय आदर्शों का प्रभाव भी कम नहीं है। गिलास का तेल बहा देने पर भी उसका अंश बना रहेगा। पुरु सोचता है - "यों भी संबंधों के बीच संबंध होते हैं। संबंधों के संबंध रक्त के संबंध। उस सबके बीच मर्यादा होती है जो उम्र भर निभाई जाती है। इन्हीं मर्यादाओं की अवमाननाओं से संबंध बिखरते है, समाज टूटता है। संवेदनाएँ तितर बितर हो जाती है।"[7] विज्ञान की करामतों को आत्मसात करने के साथ ही साथ कथाकार ने मानव संबंधों के सूक्ष्म तंतुओं

को अनावृत्त करते हुए उन्हें एक नए सूत्र में पिरोने का प्रयास करता है। संबंधों के अभाव में अलगाव, एकाकीपन, तनाव, विघटन, संत्रास, कुंठा आदि का होना सहज है। 'अवैध नगरी' का पुरु सोचता है - "किस अवैध समाज की संरचना हो रही है, इसकी परवाह किसी को नहीं, पुरु की बोखलाहट कभी अपने पर, कभी माँ पर, कभी पिता पर और कभी इस नई नवेली साइन्स की प्रगति पर, उतर रही थी। वह कहीं अपने से दूर चला गया था। अपनी आँखों के सामने ही वह आज यतीम हो गया है। उसके मन की भारतीयता बौखला उठती है -"यह मेरे पिता नहीं है तो कौन है मेरे पिता, माँ ने ऐसा क्यों किया?"[8] बच्चों को देनेवाली माँ की महानता को स्वीकारनेवाला पुरु खून की रिश्ते का समर्थन करता है - "यों मुझे यह मानने में एतराज नहीं होना चाहिए कि आप ऐसी माँ हो, माँ तो आप हो ही मैं आपके ही माँस का लोथड हूँ। आपने ही मुझे धारण किया है पूरे साढे नौ महीने। कितना दुसदायी रहा होगा।"[9] लेकिन अपने को टेस्ट ट्यूब शिशु समझने पर उनका विचार बदल जाता है। "कैसे मुखौटा पहन सकता हूँ। कैसे सह सकता हूँ ये अपने ही जीवन का विरोधाभास, इतना बड़ा विध्वंस मेरे संबंधों का। यह तो ऐसा ही है जैसे हिरोशिमा नागसाकी पर बम गिरा और सबका अस्तित्व देखते-देखते मिट्टी में मिल जाए।"[10]

अस्तित्ववाद के नये दौर का प्रतिपादन करते हुए कथाकार ने कहानी को आगे बढ़ाता है। विज्ञान का विकास और परंपरागत संबंध का लेन-देन अस्तित्ववाद का आलोचनात्मक विषय बन जाता है। अस्तित्ववाद में मानव मूल्य न शाश्वत होते हैं और मानव उन मूल्यों को मानने के लिए बाध्य भी नहीं है - पुरु सोचता है - "आपने किसी को छुआ नहीं, किसी के पास नहीं गयी। सम्भोग नहीं किया लेकिन किसी पुरुष को अपने अंदर धारण तो किया है न! न छूने पर भी पाप तो है ही। इसमें भी बडा पाप कि आज आप ने मुझे अनाथ कर दिया। हमारे बीच का संबंध-तंतु तोड दिया। मेरा ब्रह्माण्ड खाली कर दिया। मेरा अस्तित्व अधर में लटक गया। मेरे पिता मुझे छुएंगे तो मेरे अंदर एक खलाव उभर आएगा। क्या मैं उनकी आँखों में आँखें डाल कर उन्हें पापा कह सकूँगा।"[11] कथाकार के रूप में प्रियदर्शिनी जी ने सफलतापूर्वक प्रवासी मनोदशा का चित्र प्रस्तुत किया है। विज्ञान के विकास का झण्डा फहरानेवालों के मन में भी

पुश्तैनी रिश्ते, रूढि, बंधन एवं परंपरा का बोध है। नव स्वीकृत संस्कृति में भारतीय भावबोध का विलयन आसान कार्य नहीं है। भारतीय विचार का जड बहुत गहरी और पैनी है। कथाकार ने पुरु को अपना प्रतिनिधि बताकर यह विचार प्रस्तुत करता है - "सब कुछ बायलॉजिकल नहीं होता, उसके पीछे छिपी मान्यताएँ और नैतिकताओं का भी बड़ा मोल होता है। उसी पर हमारा मन, जीवन और सारा समाज टिका है, आप झुठला नहीं सकती। यों तो उफनते हुए दूध की कोई कीमत नहीं होती, बचे हुए का ही अस्तित्व बाकी रह जाता है। आनेवाली दुनिया की अवैध नगरी में कोई जानता नहीं होगा कि वह किसे अपना पिता कहे, कहे तो क्या सचमुच वह उसका ही पिता होगा। गली-गली अवैध बेमेल चेहरे घुमड रहे होंगे और कोई पहचान नहीं पायेगा उन्हें। अपने से मिलते-जुलते नक्श देख कर केवल दाँतों तले अँगुली दबाकर रह जाएँगे।"[12] पुराण पंकी यह नैतिक भावना विज्ञान की दृष्टि में मूल्यहीन है। अस्तित्ववाद में भी इस दृष्टिकोण का निराकरण होता है। अमेरिकी संस्कृति से परिचित होनेवाले प्रवासी भारतीयों के मन में यह एक अपच सामग्री बन जाता है। कथाकार की पैनी दृष्टि पहले नैतिकता द्वारा प्रस्तुत जीवन के सुरक्षित ढाँचे की ओर जाती है। लेकिन उन्हें अमेरिकी संस्कृति के अस्तित्ववाद से अलग रहना भी असंभव मालूम होता है।

भारतीय परिवेश में माँ का स्थान सर्वोच्च है। इच्छित विवाह के बाद अपने पति की शिक्षा की कमी और बिजनेस की असफलता पर दुखी माँ पति के संपर्क से बच्चा पैदा करना नहीं चाहती थी। सुयोग्य पुत्र प्राप्ति के लिए एक काबिल डॉक्टर का स्पर्म खरीदकर बच्चे को जन्म देनेवाली अपनी माँ प्रति पुरु के मन में अविश्वास एवं अवज्ञा का भाव जगाता है। वह सोचता है - "बस एक धुन में चल पड़ीं कि आपको अपना बच्चा बहुत ऊँचा चाहिए और वह किसी ऐसे ही व्यक्ति से हो सकता है जो आपकी दृष्टि में महान हो। कभी कभी यह सोचकर मुझे लज्जा आती है कि मैं आपको माँ कहता हूँ।"[13]

एक दिन अपनी माँ शिप्रा से बात करते हुए पुरु ने इसका पोल खोल देता है। इस प्रसंग में कहानीकार का कथन है - "एक बार फिर द्रौपदी व्यक्तिगत मान के समक्ष नंगी हो गई है और सारी दुनिया उसे फिर से अर्धनग्न देख रही है।"[14]

परिवार की कुलीनता, संबंधों की पावनता, रक्त संबंध का महत्व आदि अस्तित्ववादी प्रवासी जीवन में एक प्रश्न चिह्न बनकर कभी-कभी सामने खडा हो जाता है। असमंजस और परेशानी की चरम सीमा में कहानीकार ने पुरु के मुँह से कहलवाया है - "मैं आज विज्ञान इन कृत्रिम आविष्कारों और परिणामों को लानत भेजता हूँ। आनेवाले अवैध पीढ़ी पर थूकता हूँ। मुझे मेरे पिता चाहिए। मैं कैसे जानूँ। माँ तुम बताओगी या मैं लंेबोरेटरी में बैठकर एक-एक स्पर्म-क्रम की तह तक जाकर उसे ढूँढूँ और स्वयं पाऊँ, नही ंतो मैं अपने मनोशास्त्र में अवैध ही रहूँगा। किस पिता को अग्निदाह देने का अधिकार मुझे मिल जाएगा।

कथाकार प्रियदर्शिनी की संवेदनाएँ और मनःसंताप की पीडाएँ पात्रों का आत्मालाप बन कर अपने भीतर विचार सरणि बना लेते हैं और खुद को व्यक्त न कर पाने के दुहरे दुख से भरी हो उठते है। अपने-अपने जीवन की विसंगति और संत्रास को भोगते हुए ये पात्र अस्तित्ववादी चिंतन को विदा भी नहीं कर सकते और जीवन मूल्यों का निर्वाह भी नहीं कर पाते हैं। यह मानसिक तनाव और सांस्कृतिक द्वंद्व के वातावरण में प्रवासी भारतीयों का चरित्र यांत्रित बन जाता है।

मानवीय संवेदनाओं की सुदृढ़ पृष्ठभूमि में पलकर अस्तित्ववादी माहौल से समझौता करनेवाले प्रवासी लोगों की गति-विगतियों को कथाकार ने आलोचनात्मक ढंग से पाठकों के सामने लाया है।

'धूप' कहानी के माध्यम से विवाह एवं दांपत्य जीवन के महत्वपूर्ण भारतीय आदर्श से प्रेरित प्रवासी लोगों की मानसिकता का चित्रण हुआ है। भारतीय समाज में अपरिचित स्त्री पुरुष विवाह-बंधन से सुपरिचित, समर्पित सम्मिलित हो जाते है। इसे जन्म-जन्मांतर का पुण्य भी मान लेते हैं। लेकिन

अमेरिकी समाज में यह संबंध उतना सुदृढ़ एवं सशक्त नहीं है। वहाँ विवाह और विवाह मुक्ति दोनों एक क्षण मात्र का समझौता है। रेखा और विशाल के जीवन द्वारा कथाकार ने इस विषय को उजागर कर दिया है। नए घर में आने के बाद रेखा लॉन के चारों ओर रेलिंग बनाने को कहती है - प्राइवेसी केलिए। कथाकार की राय में आज उनके मन में उस रेलिंग की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है। बच्चों में भी रिश्तों के प्रति संवेदनात्मक भाव नहीं है। छोटू माँ से कहता है - "आप को तलाक ले लेना चाहिए मम्मी।"[15] पति-पत्नी के विचित्र व्यवहार का परिचय प्रियदर्शिनी जी ने दिया है - "वे कहीं रेस्टोरेन्ट में दोनों जाते और विशाल एक की बजाय दो अलग-अलग बिल मँगवाता। वह कहीं अंदर से टूट जाती और उसके मुँह का स्वाद कसैला हो जाता। उसका मन करता-उसी समय वहाँ से उठकर चली जाए।" रेखा की यह विवशता संवेदनात्मक दृष्टि में बहुत ही शोचनीय है। अमेरिका में संबंधों का कोई मूल्य नहीं है। वहाँ पिता को अपनी संतान से ज़्यादा स्वयं की चिंता होती है। पिता विशाल का परिचय प्रियदर्शिनी ने यों दिया है - वह तो इतना स्वार्थी और स्वयं सेवी हो गया है कि घर में बने चिकन की बोटियाँ भी पहले अपनी प्लेट में बटोर लेता है और बच्चे देखते रह जाते हैं।

प्रवासी लोगों को भारतीय आदर्शों के प्रतिकूल परिस्थितियों का साक्षी बन कर जीवन बिताने की मज़बूरी को कथाकार प्रियदर्शिनी ने अपनी रचनाओं में अंकित किया है।

**संदर्भ**

1. गद्यकोश. org/gk/ सुदर्शन दर्शन प्रियदर्शिनी-'अखबारवाला' पृ. 1
2. वही, पृ. 1
3. वही, पृ. 2
4. प्रियदर्शिनी, अखबारवाला, पृ. 4
5. abhivyakthi-hindi.org/kal प्रियदर्शिनी-अवैध नगरी, पृ. 7
6. अवैध नगरी, पृ. 9

7. वही, पृ. 8

8. वही, पृ. 3

9. वही, पृ. 3

10. वही, पृ. 3

11. वही, पृ. 3

12. वही, पृ. 3

13. वही, पृ. 4

14. वही, पृ. 4

15. प्रियदर्शिनी, धूप, पृ. 2